5/ [illegible]

* ॐ *

श्रीवातूलनाथ सूत्र

श्रीमदनन्त शक्तिपाद विरचित वृत्ति सहित

एवं

तात्पर्यार्थ हिन्दी भाषा-टीका सहित

●

लेखक :

कृष्णानन्द बुधौलिया

वेदान्त शास्त्री

एम. ए. (संस्कृत एवं दर्शनशास्त्र) एडवोकेट

भांडेर जिला गवालियर

●

प्रकाशक :

श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्

दतिया (म० प्र०)

प्रकाशकीय

महामहिमा-शालिनी भगवती श्री पीताम्बरा माई की कृपा से आज यह परिषद् भगवान् श्री वातुलनाथ द्वारा रचित त्रयोदश सूत्र, जिन पर श्री अनन्त शक्तिपाद द्वारा रचित वृत्ति है, का प्रकाशन करती हुई परम प्रसन्न है। यह ग्रन्थ योग का अन्तिम सोपान है। योग के द्वारा अद्वैत तत्व का साक्षात्कार ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। अनन्त श्री विभूषित श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर पूज्य आचार्य चरण द्वारा श्री किशोरीशरण चउदा एवं इस ग्रन्थ के भावानुवादक श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया के अध्यापन के फल स्वरूप ही इस महान दुर्लभ ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। भूमिका लेखक एवं अनुवादक श्री बुधौलिया जी एवं मुद्रण व्यय प्रदाता श्री इन्द्रमणि सुकुल यद्यपि परिषद् के परिवार में ही हैं, तथापि शिष्टाचार के अनुरोध से आभार प्रदर्शन पूर्वक शतशः धन्यवाद देता हूं।

इस ग्रन्थ के द्वारा संस्कृत एवं हिन्दी जगत् की श्रीवृद्धि एवं योग के योग्य साधकों का पथ-प्रदर्शन ही हमारी कामना है।

ब्रजनन्दन शास्त्री
मंत्री
श्रीपीताम्बरा संस्कृत परिषद्, दतिया

॥ ॐ ॥

श्रीवातूलनाथ सूत्र

श्रीमदनन्त शक्तिपाद विरचित वृत्ति सहित

एवं

तात्पर्यार्थ हिन्दी भाषा-टीका सहित

लेखक :

कृष्णानन्द बुधौलिया

वेदान्त शास्त्री

एम.ए. (संस्कृत एवं दर्शनशास्त्र) एडवोकेट

भांडेर जिला गवालियर

प्रकाशक :

श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्

दतिया (म० प्र०)

प्रकाशक :	श्री पीताम्बरा-संस्कृत-परिषद् दतिया (म. प्र.)
आवृत्ति :	प्रथम : विक्रमाब्द २०२९
मूल्यम्	रूप्यक-द्वयम्
सर्वाधिकार :	प्रकाशकायत्त
मुद्रक :	श्रीद्वारिकेश मिश्र श्रीराम प्रेस, झाँसी

भूमिका

•

प्राणापान समायोगाच्छब्दतत्त्व समाश्रयात् ।
विज्ञानतत्त्व सापेक्षात् ब्रह्माद्वैतं प्रकाशते ॥

पूज्य गुरुवर श्रीस्वामीजी महाराज ने ईशावास्योपनिषत् के योगपक्षीय भाष्य के मंगलाचरण में उपर्युक्त श्लोक की रचना की है। इसमें परम लक्ष्य की सिद्धि हेतु अध्यात्म शास्त्रोक्त तीन साधन प्राणतत्त्व, शब्दतत्त्व तथा विज्ञानतत्त्व की चर्चा की है।

इन साधनों में प्राणतत्व प्रधान है। प्राणतत्व के आश्रय से ही शब्दतत्व तथा विज्ञानतत्व अपने रूप में प्रकट होते हैं। प्राण केवल वायु का स्वरूप नहीं है अपितु वह पञ्चतत्वों से अतिरिक्त ब्रह्म-स्वरूप ही है। कहा भी है:—

"स ब्रह्मा स स्वरः शान्तः स शिवः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः सः प्राणः स कालाग्निः स चन्द्रमा ॥

कै० उ० १०-१०

इसी प्रकार स्वरोदय में इसका उल्लेख है—

'स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।
स्वरे च सर्वं त्रैलोक्यं स्वरमात्म स्वरूपकम् ॥'

स्वर ही प्राण है 'प्राणस्तु तथानुगमात्'—

प्रस्तुत वातूलनाथ सूत्रों में स्वर परम शून्य आकाश में सतत प्रवाहित स्वर की प्राप्ति को ही अन्तिम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। स्वर ही महानाद है जिसमें शब्द तथा विज्ञान के लय हो जाने पर शिव तथा शक्ति के परम सामरस्यात्मक स्वरूप के दर्शन होते हैं।

(१) मन्त्र योग (२) लय योग (३) हठ योग तथा (४) राज योग नाम से योगतत्त्वोपनिषत् में योग के चार भेद कहे गये हैं। यद्यपि योग साधन का ध्येय अद्वैत चित् ब्रह्म में तादात्म्य की प्राप्ति है तथापि अधिकारी एवं साधन के आधार पर योग का उपर्युक्त विभाजन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में लय योग का निरूपण है। 'लय योगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः' लय योग अनेकों प्रकार का है किन्तु सर्वोत्कृष्ट होने के कारण यहाँ नादात्मक लय का ही प्रतिपादन किया गया है। "नास्ति नाद समो लयः।" अतः नाद का किञ्चित् विवेचन यहां आवश्यक है।

शारदा तिलक में शिव को निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों में प्रतिपादित किया गया है। निर्गुण शिव प्रकृति से परे, निष्कल तत्त्व हैं तथा सगुण शिव प्रकृतिमय स-कल तत्त्व हैं। सकल परमेश्वर के सच्चिदानन्द विभव से शक्ति, शक्ति से नाद, तथा नाद से विन्दु की उत्पत्ति का उल्लेख है। प्रस्तुत ग्रन्थ में महानाद को वाणी के परा आदि रूपों में प्रवाहित स्वर का कारण कहा गया है।

श्रीमदाचार्य के शब्दों में "नाद एव घनीभूय क्वचिदम्येति विन्दुतां" अर्थात् नाद ही घनत्व को प्राप्त कर विन्दु के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जिस प्रकार कुण्डल स्वर्ण का स्वरूप है उसी प्रकार नाद तथा विन्दु शक्ति के स्वरूप हैं। अर्थात् नाद तथा विन्दु दोनों ही शक्ति सृष्ट्युन्मुख प्रवाह की प्रारम्भिक अवस्थाएें हैं।

जिनका प्रतिलोम प्रवाह में शक्ति के अन्तर्गत एक रूप हो जाता है।

षट्-चक्र-निरूपण में भी महानाद को शिव का अर्ध भाग निरूपित किया गया है।

"लयस्थानं वायोस्तदुपरि च महानाद रूपं शिवार्धम्।
शिवाकारं शान्तं वरदमभयं शुद्ध-विद्या प्रकाशम्॥

शिव का आधा भाग निष्कल, निष्क्रिय है शेष आधा भाग उच्छूनात्मक सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूप है, अतः महानाद को शिव का आधा भाग कहने से तात्पर्य है कि महानाद शक्ति रूप है जो सकल संसार की जननी है। अभिन्न निमित्तोपादान ब्रह्म की प्रकारान्तरसे शिव-शक्ति के सामरस्य-रूप में कल्पना की गई है।

पादुका पञ्चक में भी नाद-विन्दु को गुरु के सिंहासन के रूप में चिन्मय प्रतिपादित किया गया है—

"चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपुः।
नाद-विन्दु मणिपीठमण्डलम्॥

इस प्रकार महानाद ही विन्दु रूप सृष्टि का कारण सिद्ध है।
पर-विन्दु के भेद होने पर विन्दु, नाद तथा बीज की उत्पत्ति होती है।

"भिद्यमानात्पराद्विन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
शब्द ब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागम विशारदाः॥"

पर-विन्दु से कार्य रूप नाद की उत्पत्ति का शारदा तिलक में उल्लेख है जो शब्द–ब्रह्म के नाम से आगम शास्त्र में प्रसिद्ध है।

शब्द–ब्रह्म कुण्डली के रूप में प्राणियों की देह के अन्तर्गत स्थित है जिससे वर्णात्मक गद्य-पद्य मय शाब्दी प्रपञ्च का आविर्भाव

होता है। विन्दु से क्रमशः सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या, माया, कला, अविद्या की उत्पत्ति होती है। अविद्या से राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, चित्त, अहङ्कार, बुद्धि, मन, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की क्रमानुगत उत्पत्ति होती है।

इन्द्रियों का जब विषय से संयोग होता है तब इन्द्रियाँ विषय के रूप में परिणत हो जाती हैं। यही परिणाम वृत्ति के नाम से कहा जाता है। दीप की शिखा के समान बुद्धि के अग्र भाग को बुद्धि-वृत्ति नाम से कहा है जिससे चित्त एकाग्रता को प्राप्त होता है। जिस प्रकार द्रवित ताम्र को साँचे में ढालने से ताम्र का आकार साँचे के आकार के समान बन जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियों के द्वारा बुद्धि के अग्र भाग का वाह्य अर्थों से संयोग होने पर बुद्धि का आकार अर्थ के आकार के समान परिणत हो जाता है। अर्थात् वृत्तियों के द्वारा विश्वात्मक ज्ञान की उत्पत्ति होती है जिसके कारण पुरुष अपने को विश्व के नाना पदार्थों के रूपों में अनुभव करने लगता है। तरङ्गित जल में प्रतिविम्बित चन्द्र जिस प्रकार अनेक रूपों में दृष्टिगत होता है उसी प्रकार वृत्तियों में प्रतिविम्बित पुरुष विषयों के आकार में अनेक रूपों में प्रतिभाषित होता है। जब राग, द्वेष, सुख, दुख आदि के रूप में वृत्तियों का उदय होता है तब पुरुष रागी, द्वेषी, सुखी, दुःखी आदि रूप में सम्बोधित किया जाता है। एकाग्र अवस्था में परिणत चितिशक्ति का जब स्वस्वरूप में प्रतिष्ठान होता है तब पुरुष चित् रूप में आभासित होता है। अर्थात् विषयों से पराङ्मुख वृत्तियों का जब अपने मूल कारण में लय हो जाता है तब पुरुष का अनेक रूपों में आभास न होकर केवल चिद्रूप में आभास होता है।

इस प्रकार वृत्तियों के लय से संसरणात्मक अनुभूति समाप्त हो जाती है। अतः वृत्तियों के निरोध के द्वारा आत्म तत्त्व की प्राप्ति कही गई है। वृत्तियों का निरोध योग का मुख्य अङ्ग है।

प्रस्तुत सूत्रों में निरोध का ही संहार के नाम से उल्लेख है। "चिदेकाकारता खलु संहारः।" अर्थात् चित् स्वरूप में ऐक्य की प्राप्ति ही संहार है। वृत्तियों का निरोध यद्यपि प्राणी मात्र का धर्म है तथापि किसी को, कदाचित् कहीं इस की अनुभूति होती है। जीव जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं में विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय के संसरण का अनुभव करता है। विश्व की इस नानात्मक अनुभूति का इदं नाम से शास्त्र में संकेत किया गया है।

सूक्ष्म एवं स्थूल विश्व प्रपञ्च के रूप में विन्दु के विकास के समान शब्द प्रपञ्च का विकास होता है, जो अ-कार से ह-कार पर्यन्त वर्णमाला के स्वरूप में प्रकट होता है, जिसका संक्षेप में अहं नाम से उल्लेख किया गया है। विन्द्वात्मक समस्त इदं रूप विश्व-प्रपञ्च का वाचक वर्णात्मक शब्द प्रपञ्च है। अर्थात् सांकेतिक भाषा में 'इदं' नामक वेद्य विश्व का वाचक 'अहं' है कहा भी है:-

"अतोऽकार हकाराभ्यामहमित्य प्रथक्तया ।
प्रपञ्चं शिवशक्तिभ्यां क्रोडीकृत्य प्रकाशते ।।"

मातृका-चक्र-विवेक के अनुसार पञ्चभूतों का वाचक क-वर्ग, पञ्चतन्मात्राओं का च-वर्ग, कर्मेन्द्रियों का ट-वर्ग, ज्ञानेन्द्रियों का त-वर्ग, मन से पुरुष पर्यन्त तत्त्वों का प-वर्ग, कला से माया पर्यन्त तत्त्वों का अन्तस्थ य र ल व, तथा शुद्ध विद्या से शक्ति पर्यन्त तत्वों का द्योतक श ष स ह ऊष्माण वर्ण हैं। षोडश स्वरों का अकार में समावेश है। अ-कार शिव का वाचक है एवं ह-कार शक्ति का वाचक है। कहा भी है:—

"अकारः सर्व वर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोन्त्यः कला रूपः विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः ।।"

इस प्रकार समस्त तत्त्वों का शिव-शक्ति पदार्थ से आविर्भाव होता है तथा उसमें ही विलय हो जाता है। अर्थात् संक्षेप में

कहते हैं कि इदंरूप विश्व का विलय शिव-शक्ति रूप अहं में हो जाता है।

"अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः।
पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वात्मानमशिवापहम्॥"

इदमात्मक विश्व के विलय होने के पश्चात् अकारात्मक शिव तथा हकारात्मक शक्ति अहं के रूप में अवशिष्ट रह जाते हैं, जिनके योग से नाद का आविर्भाव होता है। तात्पर्य यह कि नाद का स्वरूप शिव एवं शक्ति का सामरस्य है।

"विन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्।
तयोर्योगे भवेन्नादः तेभ्यो जातस्त्रिशक्तयः॥"

इसके पश्चात् अहं के भी विलय होने पर नाद के रूप में शिव शक्ति का सामरस्यात्मक साक्षात्कार होता है अतः नाद का अनुसंधान योगी का चरम लक्ष्य हो जाता है।

नाद के स्फुरण के कारण सविकल्प तथा निर्विकल्पक ज्ञान समूह के संहार होजाने पर साधक को परम शून्य गगन में यदाकदा निरस्तरङ्ग, स्पर्श रहित पर-संवित् का साक्षात्कार होता है।

साधनावस्था में आवेश वश सृष्टि, स्थिति तथा लयात्मक क्रम का वाह्य से अन्तः तथा आभ्यन्तर चिति से वाह्य अवस्था में प्रवेश होता रहता है। यह वाह्याभ्यन्तर अनुभूति क्रम मुद अर्थात् हर्षोत्पादक होता है। अतः यह क्रम मुद्रा के नाम से भी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि तुरीया चिति शक्ति स्वाधिष्ठित सृष्टि आदि क्रम को जब आत्मसात् कर लेती है तब पूर्णाहन्ता स्वरूप तुरीयावस्था में साधक वाह्य विषयों में व्याप्त रहते हुए भी पराशक्ति के स्फार के कारण परम योगावस्था को प्राप्त करता है।

योग की इसी अवस्था विशेष का समर्थन करते हुए टीकाकार श्री अनन्तशक्तिपाद ने मंगलाचरण में कहा है कि विकल्प-सङ्कल्प से रहित निस्तरङ्ग संवित् के प्रभाव से समस्त इन्द्रियों के मध्य संस्थित, किन्तु इन्द्रियों के कलङ्क से अलिप्त, महाशून्य व्योम में समाविष्ट रहता हूं।

"येनेह सर्ववृत्तीनां मध्य संस्थोऽपि सर्वदा।
परव्योम्नि समाविष्टः तिष्ठाम्यस्मिन्निराविलः॥"

क्रम मुद्रा द्वारा लब्ध साक्षात्कार के पश्चात् अक्रम मुद्रा के साधन समस्त वृत्तियों के एक साथ विलय होने पर अभेद, चिद्रूप सामरस्यात्मक संवित्-तत्त्व का अच्युत साक्षात्कार होता रहता है।

नाद की स्फूर्ति से उद्भूत परम शून्य गगन में प्राण-अपान, पञ्च भूतात्मक युग्म वृत्ति, द्वैत रूप अहं-इद, तथा सृष्टि-स्थिति लयात्मक अनुभूति रूप त्रिकञ्चुक का विलय हो जाने पर महानाद की अनुभूति होती है।

इस प्रकार नादानुभूति के चिरभ्यास से मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रियों के प्रत्येक घस्मर प्रवाह में, समस्त उद्योगों की संहारक, विश्रांति रूप महारश्मियों का उदय होता है जिसके कारण द्वैतात्मक चिदचिद् अनुभूति के विगलित हो जाने पर क्रमाक्रम से परे, संकल्प-विकल्प से रहित, अकरण-सिद्ध महानाद-स्वरूप महाबोध के सतत अविनश्वर प्रवाह का आविर्भाव होता है। इस प्रकार आविर्भूत नाद में तादात्म्य के कारण जीवन काल में ही साधक को महामुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। उपनिषद् के महावाक्यों का भी यही तात्पर्य है।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी भेद से अनुस्यूत वाणी के चतुर्धा प्रवाह में प्रत्येक वर्ण के अन्तर्गत, स्वर के रूप में अनाहत—हतोत्तीर्ण महानाद ही प्रवाहित हो रहा है। वर्ण माला

का प्रथम अक्षर अकार शिव का स्वरूप है । अतः सूत्रकार ने अन्तिम रूप से अकार के साक्षात्कार से व्योमगत स्वरता अर्थात् महानाद की प्राप्ति का उपदेश किया है ।

टीकाकार ने विस्तार से अकार के चार रूप हत, अनाहत, अनाहत-हत तथा अनाहत-हतोत्तीर्ण की व्याख्या की है ।

हत जाग्रद्‌रूप ज्येष्ठा, अनाहत स्वप्न रूप अम्बिका, तथा अनाहत-हत सुषुप्ति रूप वामा है, जिनके उल्लास से तुर्य रूप अनाहत-हतोत्तीर्ण रौद्री शक्ति का स्फुरण होता है । रौद्री रूप अनाहत-हतोत्तीर्ण स्वर के तादात्म्य से प्राण, तन्मात्रिक शरीर, एवं शून्य प्रमाता–गत अभिमान के विगलित हो जाने से गुरुवर अपनी निस्पन्द, आनन्द से सुन्दर, शून्यात्मक दृष्टि से जो कुछ अवलोकन करते हैं वह सब चिन्मय ही होता है ।

अन्य शास्त्र-नियत देवता के आवलम्बन से तादात्म्य की प्राप्ति का निरूपण करते हैं किन्तु प्रस्तुत सूत्रों में निरालम्ब सिद्धि का प्रतिपादन है । पातञ्जल योग सूत्रों में आलम्बन रहित योग सिद्धि को असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से निरूपित किया गया है । नाद-बिन्दु उपनिषत् में तादात्म्य अनुभूति का वर्णन इस प्रकार किया गया है, जिसमें सदृश्य के बिना साधक की दृष्टि स्थिर रहती है, बिना प्रयत्न वायु निस्पन्द हो जाती है तथा आवलम्ब के बिना चित्त शांत हो जाता है । वह अन्तर-नाद रूप ब्रह्म है ।

"दृष्टिः स्थिरा यस्य विना सदृश्यं,
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम् ।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बम्,
स ब्रह्म तारान्तरनादरूप ॥"

× × × ×

पुस्तक परिचय

प्रस्तुत वातूलनाथ सूत्रों के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ईसा की नवमी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक रचित शैव साहित्य में इस पुस्तक का कोई उल्लेख प्राप्त न होने से पं० मधुसूदन कौल ने सूत्रों की रचना का समय बारहवीं शताब्दी के पश्चात् निर्धारित किया है। सूत्रों के टीकाकार के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नहीं है। श्री अनन्त शक्ति पाद ने सूत्रों की रचना योगिनियों द्वारा कही है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बहु-रूप-गर्भ स्तोत्र की टीका भी श्री अनन्त शक्तिपाद द्वारा रची गई है।

समर्पणं

सूत्रों एवं टीका की भाषा अपरिचित तथा जटिल है। मैं विषय तथा भाषा से अनभिज्ञ हूं किन्तु परम श्रद्धेय गुरुवर श्री स्वामी जी महाराज की महान कृपा के रूप में इस कार्य को करने का अवसर प्राप्त हुआ। अतिशयोक्ति नहीं अपितु तथ्य लिख रहा हूं कि पूज्यपाद गुरु जी ने ही मेरे अन्तस्थ में विराजकर योग सूत्रों के अर्थ को प्रकाशित किया है। अतः गुरु के श्रीचरणों में ही इस प्रयास को समर्पित करता हूं।

"यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्वयम् ।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च ॥"

आभार प्रदर्शन

पुस्तक के प्रकाशन के लिये मैं श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद का आभारी हूं।

अनन्त श्री पूज्यपाद स्वामी जी के अनन्य भक्त श्री किशोरी-शरण चउदा का आभार स्वीकार किये बिना मुझे विश्रान्ति नहीं

जिन्होंने मेरे प्रयास को प्रोत्साहन देने के लिये अपनी कृति को प्रकाशित नहीं किया।
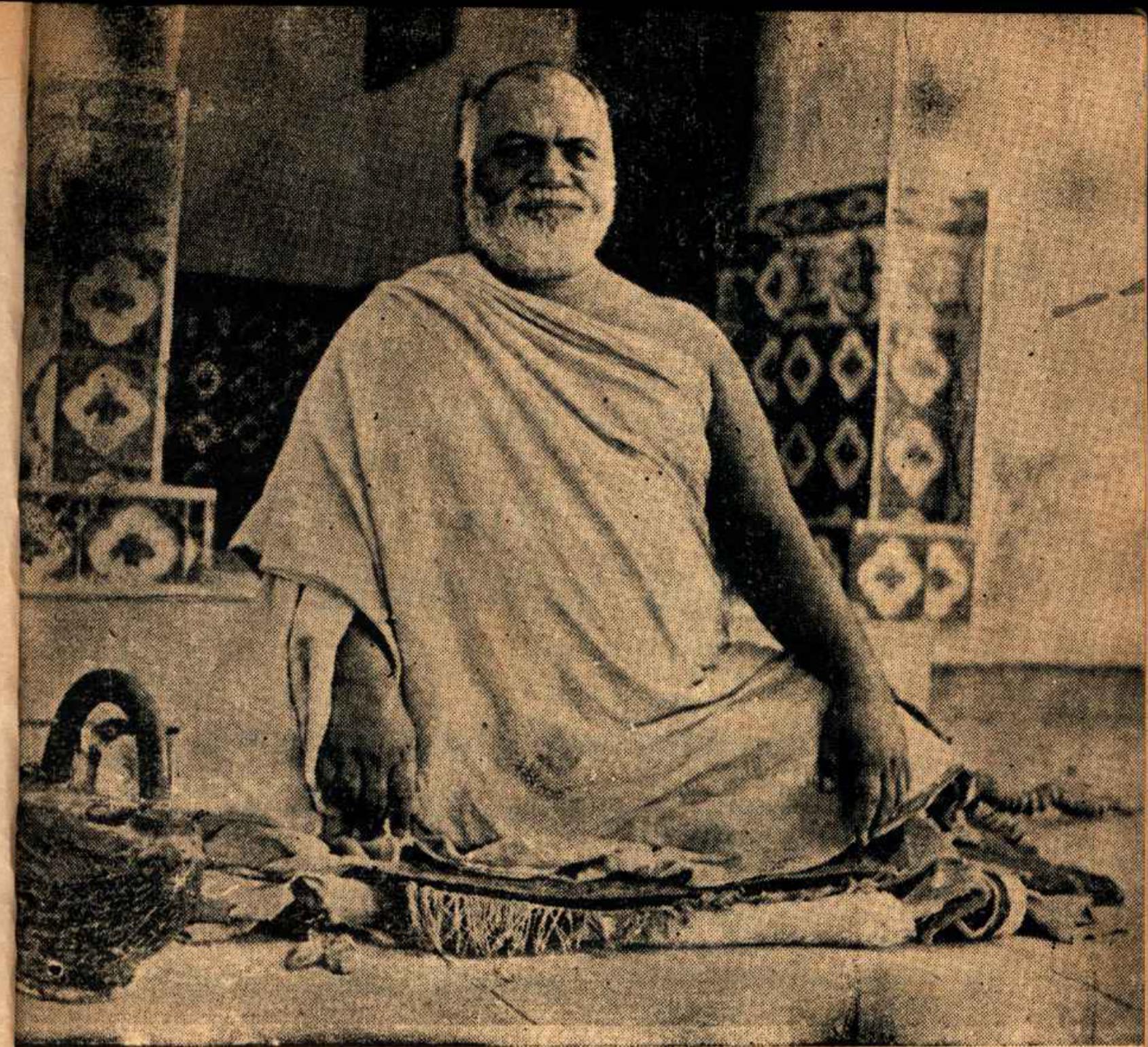
अन्त में डा० श्री इन्द्रमणि शुक्ल प्राध्यापक मेडीकल कालेज रायपुर का हार्दिक आभार प्रकट करता हूं, जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन का पूर्ण भार वहन कर योग शास्त्र में अपनी अभिरुचि का परिचय दिया।

निवेदन

अन्त में पाठकों से विनय है कि मेरी त्रुटियों पर ध्यान न देकर सहानुभूति पूर्वक पुस्तक का प्रगाढ़ अध्ययन करने की कृपा कर मुझको कृतकृत्य करें तथा विषय को गुरुमुख से श्रवण कर योग की युक्तियों के अभ्यास द्वारा जीवन काल में ही ब्रह्मानन्द का आस्वादन करें।

विनयावनत—
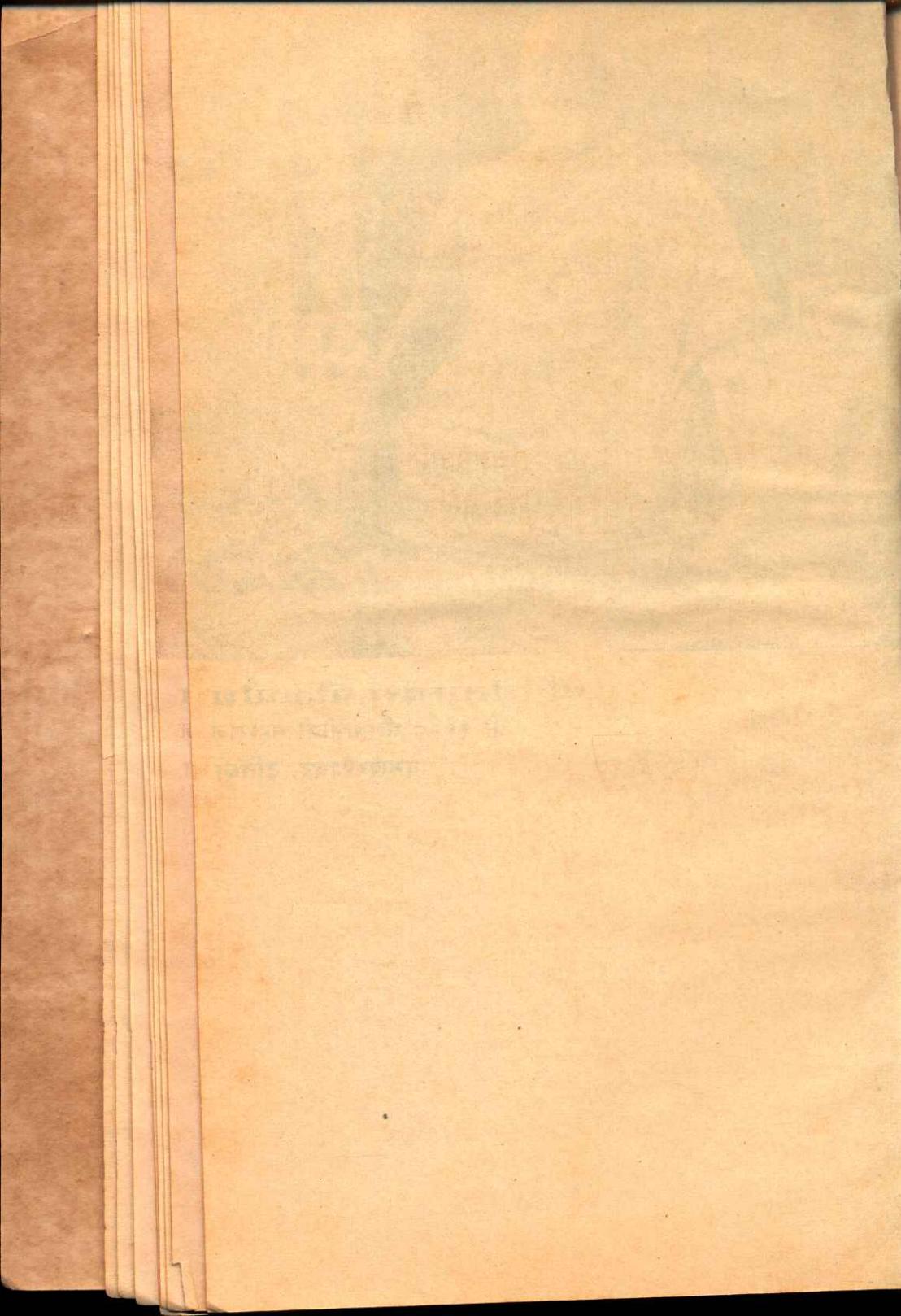
कृष्णानन्द बुधौलिया

भांडेर (गवालियर)

श्री पीताम्बरा पीठाधीश
श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज
वनखण्डेश्वर, दतिया

ओं नमः संविद्वपुषे परमशिवाय

अथ
श्री वातूलनाथ सूत्राणि

श्रीमदनन्तशक्तिपादविरचितवृत्तिसमेतानि ।

तात्पर्यार्थ हिन्दी भाषा टीका सहित

●

संघट्टघट्टनबलोदितनिर्विकार-
शून्यातिशून्यपदमव्ययबोधसारम् ।
सर्वत्र खेचरदृशा प्रविराजते यत्
तन्नौमि साहसवरं गुरुवक्त्रगम्यम् ॥ १ ॥

विषयेन्द्रियों के संगम के संहार के वल से उद्भूत निर्विकार, शून्यातिशून्य, अव्यय, ज्ञान-स्वरूप, खेचरी-दृष्टि से प्रकाशित, गुरु-मुख गम्य साहसवर (शिव) की आराधना मंगल कामना के लिए टीकाकार ने की है ।

सर्वोल्लङ्घनवृत्त्येह निर्निकेतोऽक्रमक्रमः ।
कोऽप्यनुत्तरचिद्व्योमस्वभावो जयतादजः ॥ २ ॥

दिक्-काल-आकार आदि से अपरिच्छिन्न निर्निकेत अक्रम तथा क्रम रूप (शिव-शक्ति रूप) सर्वोत्कृष्ट चिदाकाश-स्वभाव अज तत्त्व की समस्त वृत्तियों के अतिक्रमण के द्वारा विजय हो ।

श्रीमद्वातूलनाथस्य हृदयाम्भोधिसंभवम् ।
पूज्यपूजकपूजाभिः प्रोज्झितं यन्नमामि तत् ॥ ३ ॥

श्री वातूल नाथ के हृदय कमल से प्रादुर्भूत पूज्य-पूजक-पूजा भाव से रहित अर्थात् ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय रूप त्रिपुटी से परे, अद्वैत तत्त्व की आराधना करते हैं ।

येनेह सर्ववृत्तीनां मध्यसंस्थोऽपि सर्वदा ।
महाव्योमसमाविष्टस्तिष्ठाम्यस्मिन्निराविलः॥ ४ ॥

तमपूर्वमनावेशमस्पर्शमनिकेतनम् ।
संविद्विकल्पसंकल्पघट्टनं नौम्यनुत्तरम् ॥ ५ ॥

जिसके कारण समस्त वृत्तियों के मध्य में स्थित होते हुए भी परमाकाश-शून्य में सदा निष्कलङ्क समाविष्ट रहता हूं; उस अपूर्व, आवेश स्पर्श–तथा निकेतन से रहित, संकल्प-विकल्पात्मक ज्ञान के संहारक, अद्वैत तत्त्व को नमस्कार है ।

योगिनीवक्त्रसंभूतसूत्राणां वृत्तिरुत्तमा ।
केनापि क्रियते सम्यक्परतत्त्वोपबृंहिता ॥ ६ ॥

ज्ञान रूप मरीचिकाओं से प्रादुर्भूत सूत्रों में प्रतिपादित परम तत्त्व को विस्तार से प्रकाशित करने के लिए इस उत्तम टीका की रचना किसी के द्वारा की गई है ।

प्रथम-सूत्र

इह किल षड्दर्शनचतुराम्नायादिमेलापपर्यन्तसमस्त-दर्शनोत्तीर्णमकथ्यमपि श्रीमद्वातूलनाथस्य पीठेश्वर्यं उच्छुष्म-पादौघमुक्त्वा तदनु परमरहस्योपबृंहितत्रयोदशकथासाक्षा-त्कारदृशा क्रमाक्रमास्तिनास्तितथ्यातथ्यभेदाभेदसविकल्प-निर्विकल्पभवनिर्वाणकलङ्कोज्झितं किमप्यनवकाशं परं तत्त्वं सूत्रमुखेनादिशन्नियत्रेदमादिसूत्रम्

श्री वातूलनाथ पीठेश्वर उच्छुष्मपाद को, समस्त दर्शन शास्त्र तथा वेदों के समन्वय एवं अकार अर्थात् शिव तत्त्व के विवेचन के पश्चात् विस्तृत, परम रहस्य के प्रत्यक्ष अनुभव से उद्‌भूत दृष्टि से प्रस्तुत तेरह सूत्रों का उपदेश किया गया है। इन सूत्रों में क्रम-अक्रम, अस्ति-नास्ति, तथ्य-अतथ्य, भेदाभेद, सविकल्प-निर्विकल्प भव-निर्माण, रूप द्वन्द्वात्मक अनुभव से अतीत शुद्ध अवकाश-रहित परम तत्त्व का उपदेश किया गया है। जिसका प्रथम सूत्र निम्नलिखित है—

महासाहसवृत्त्या स्वरूपलाभः ॥ १ ॥

महासाहस वृत्ति के द्वारा स्वरूप-लाभ होता है ॥ १ ॥

अतितीव्रातितीव्रतरविश्रृङ्खलशक्तिपाताघ्रातस्य स्वस्व-रूपसमाविष्टस्य कस्यचित् क्वचित् कदाचित् अकस्मादेव 'महासारसवृत्त्या' घस्मरमहाघनतरपरनादोल्लासस्फारेण सविकल्पनिर्विकल्पात्मकसमस्तसंविन्निवहघट्टनान्निरावरण–महाशून्यतासमावेशनिष्ठया 'स्वरूपलाभः' समस्तकल्पनोत्तीर्ण-

त्वादकृतकनिरवकाशनिरुत्तरनिस्तरङ्गनिरवधिनिर्निकेतास्पर्श संवित्प्राप्तिर्भवति,—इति रहस्यार्थः । महासाहसवृत्त्यानु-प्रवेशश्च वक्ष्यमाणकथितक्रमेणाधिगन्तव्यः ॥ १ ॥

अत्यन्त तीव्र अनवरत शक्तिपात् से प्रभावित, आत्म-स्वरूप में समाविष्ट किसी साधक को कहीं, कभी, अकस्मात् ही महासाहस वृत्ति के द्वारा अस्पर्श संवित्-स्वरूप परतत्व का साक्षात्कार होता है।

साहसवृत्ति :—

उपर्युक्त प्रकार से आत्मस्वरूप में समाविष्ट साधक को अत्यन्त सघन पर नाद की अनुभूति होती है। यह नाद स्वभावतः लयात्मक होता है। अतः इसके आविर्भाव के परिणाम स्वरूप सविकल्पक एवं निर्विकल्पक वृत्ति-जन्य-ज्ञान प्रवाह का संहार हो जाता है तथा आवरण रहित महाशून्यता में प्रवेश होता है जिसको महासाहस वृत्ति कहा गया है।

स्वरूप-लाभ :—

इस प्रकार प्रादुर्भूत महासाहस-वृत्ति के द्वारा समस्त कल्पनाओं से परे, निरवकाश, शान्त, शाश्वत, दिक्-काल-आकार की सीमा से अतीत, स्वतन्त्र, उत्कृष्ट, स्वाभाविक, अस्पर्श संवित् की अनुभूति होती है।

टिप्पणी:— इन्द्रिय तथा मन के संयोग से सविकल्पक तथा निर्विकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। जिसका तान्त्रिक भाषा में इदं शब्द के द्वारा संकेत किया गया है। यह इदं जगत् रूप है। अकार से हकार पर्यन्त वर्ण-समूहके अन्तर्गत समस्त जगत् के पदार्थों की अभिव्यक्ति है। अतः पदार्थों की ज्ञानात्मक अनुभूति को 'अहं' नाम से कहा गया है, जो आत्म-स्वरूप है।

द्वितीय-सूत्र

झटिति सर्वोल्लङ्घनक्रमेणानिर्निकेतस्वरूपप्राप्तिसाक्षात्कारमहासाहसचर्चासंप्रदायं निरूप्य, इदानीं तत्रैव सर्ववृत्ति-महासामरस्यमेककाले प्रचक्षते

प्रथम सूत्र में महासाहस सम्प्रदाय के नाम से समस्त वृत्तियों के क्रम पूर्वक विलय की चर्चा की गई है। इस सूत्र में समस्त वृत्तियों के एक काल में ही सामरस्य का कथन किया गया है।

तल्लाभा [च्छुरिता यु] द्युगपद्वृत्तिप्रवृत्तिः ॥ २ ॥

उसके (स्वरूप के) लाभ से अच्छुरित, युगपत्, बृत्तियों की प्रबृत्ति हो जाती है।

वृत्तीनां दृगादिमरीचिरूपाणां तथा रागद्वेषाद्युन्मेषवतीनां 'युगपत्' तुल्यकालं क्रमपरिपाट्युल्लङ्घनेन अक्रमप्रवृत्त्या 'तल्लाभाच्छुरिता' तत्तेन प्रागुक्तमहासाहसदशासमावेशक्रम-

---

नाद की अनुभूति में समस्त सविकल्प एवं निर्विकल्प वृत्ति-ज्ञान का लय हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप महाशून्यता का उदय होता है। यह परिवर्तन उच्छलनात्मक है। सहसा वलेन निर्वृत्तं निष्पन्नं अर्थात् वल–पूर्वक प्राप्त नवीन स्थिति। जिसका महासाहस वृत्ति के नाम से उल्लेख किया गया है। इस प्रकार इदंरूप जगत का अहं में महासाहस वृत्ति के द्वारा विलय हो जाता है।

अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः ।
पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वात्मानमशिवापहम् ॥

प्राप्येण स्वरूपलाभेन कालाकालकल्पनोत्तीर्णलंग्रासवपुषा महानिरीहेणाच्छुरिता स्पृष्टा स्वस्वरूपतां नीता 'प्रवृत्तिः' प्रकर्षेण वर्तमाना वृत्तिः सततमच्युततया तत्समावेशेनावस्थानमित्यर्थः । इत्यनया उक्तिभङ्ग्या सर्ववृत्तीनां समनन्तरमेव सर्वोत्तीर्णमहाशून्यताधाम्नि धामरूपे तन्मयतया परस्परविभेदविगलनेन उदयपदव्यामेव सततमवस्थितिः स्थितेत्यर्थः ॥ २ ॥

पूर्व सूत्र में उपदिष्ट महासाहसदशा में क्रम पूर्वक प्रवेश से अनुभूत स्व-स्वरूप की, काल!काल-द्वन्द्व जनित कल्पनाओं से अतीत. निष्प्रयोजन, स्वाभाविक सर्व-संहारक सामर्थ्य होती है, जिसके कारण चक्षु आदि मरीचि रूप वृत्तियों तथा राग द्वेष आदि उन्मेषशील वृतियों की उस आत्मा–स्वरूप में अभिन्न, युगपत अर्थात् क्रम परिपाटी के आश्रय के विना ही अक्रम प्रवृत्ति हो जाती है अर्थात् प्रकृष्ट रूप से वर्तमान वृत्तियां स्व-स्वरूप को प्राप्त करके उसमें अभिन्न रूप से एक काल में ही अवस्थित हो जाती हैं।

उपर्युक्त रूप में परस्पर भेद के नष्ट हो जाने से समस्त वृत्तियों का परम महाशून्यता में अभेद, तन्मय, समनन्तर यह अवस्थान प्रवृत्ति की प्रारम्भावस्था में ही सिद्ध हो जाता है।

टिप्पणी:–क्रमः = सृष्टि–स्थिति--संहाराणामाभास-विच्छेदन-स्वभावः
अक्रमः = युगपत्तेषामवभासः ॥

भा चैषा प्रतिभा तत्तत्पदार्थक्रमरूपिता ।
अक्रमानन्त चिद्रूपः प्रमाता स महेश्वरः ॥

तृतीय-सूत्र

इत्यनया उक्तिभङ्ग्या तुल्यकालकथनोपदेशमुक्त्वा, इदानीं पुस्तककथां निरूपयन्ति

संदर्भः—वृत्तियों के एक कालीन विलय का प्रतिपादन करके अब पुस्तक कथा का निरूपण करते हैं।

क्रम तथा अक्रम मार्ग से तत्व की अनुभूति महाशून्य में होती हैं अतः अब महाशून्य अवस्था की प्राप्ति का उपदेश करते हैं।

उभयपट्टोद्घट्टनान्महाशून्यताप्रवेशः ॥ ३ ॥

उभय पट्टों के उद्घाटन से महाशून्यता में प्रवेश होता है।

श्रीमन्निष्क्रियानन्दनाथानुग्रहसमये श्रीगन्धमादनसिद्धपादैरकृतकपुस्तकप्रदर्शनेन या परपदे प्राप्तिरुपदिष्टा सैव वितत्य निरूप्यते।

इस सूत्र में श्रीमत् निष्क्रियानन्दनाथ पर अनुग्रह के समय श्री गन्धमादन सिद्ध द्वारा उपदिष्ट सिद्धांत का निरूपण किया गया है।

सप्तरन्ध्रक्रमोदितसप्तशिखोल्लासात्मकः प्राणप्रवाहोदयः स एवोर्ध्वपट्टकः पूर्णवृत्त्युदयः, रन्ध्रद्वयसुषिरनालिकाप्रवाहप्रसृतोऽपानरूपोऽधःपट्टकः पञ्चेन्द्रियशक्ति- वेष्टितः पञ्चफणधर्मानिबन्धकोऽधःस्थितः।

दो श्रोत्र, दो चक्षु, नासिका के दो रन्ध्र तथा मुख, सप्त रन्ध्र हैं। इन सातों रन्ध्रों में प्रवाहित प्राण का उदय ऊर्ध्व पट्टक है। इसमें वृत्ति का पूर्ण उदय होता है।

तस्य वलयद्वय जाग्रत्स्वप्नात्मकमुन्मुद्य ग्रन्थिनिबन्धनमपहृत्य 'उभयपट्टोद्घट्टनात्' प्राणापानद्वयविदारणात्

मध्यवर्ती यः प्राणरूपो महाशून्यतास्वभावःकुलाकुल-विकल्पदशोज्झितोऽव्यपदेश्यमहानिरावरणनिरत्ययवेद्यवेदक-निर्मुक्तो वर्णावर्णनिवर्णोत्तीर्णः स्पर्शास्पर्शप्रथापरिवर्जित उपचारात्परमाकाशाद्यभिधानैरभिधीयते । तत्र 'प्रवेशः' तत्समावेशतया सामरस्यावस्थितिः स एव प्राप्तमहोपदेश-नामाविर्भवतीत्यर्थः ।। ३ ।।

नासिका के दो छिद्रों से प्रवाहित अपान प्रवाह को अधः पट्टक कहा जाता है । पांचों इन्द्रियों की शक्ति से यह अधः पट्टक पंच-फणी सर्प के समान है जिसके जाग्रत् तथा स्वप्न नामक दो वलय (घेरे) हैं । गन्थि रूप इन दो वलयों को तोड़कर प्राण तथा अपान दोनों पट्टकों का विदारण कर प्राण रूप मध्यवर्ती महाशून्यता का आविर्भाव होता है ।

महाशून्यता भाव में यह स्थिति विषय तथा इन्द्रियों के विकल्प से रहित, अनिर्देश्य, निरावरण, वेद्य–वेदक भाव से मुक्त, वर्ण अवर्ण-तथा निवर्ण से परे, स्पर्श-अस्पर्श ज्ञान से मुक्त होती है अतः उपचार से यह आकाश आदि नामों से सम्बोधित कीजाती है । इस अवस्थामें प्रवेश करनेसे साधकको सामरस्यकी अनुभूति होती है ।

टिप्पणी:— मूलबन्ध, उड्डीयान तथा जालन्धर बन्ध के अभ्यास से प्राण तथा अपान का निरोध होता है जिसके कारण साधक सहज ही शून्याकाश में स्थिति प्राप्त कर लेता है । योग की यह क्रिया गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है ।

कुल = इन्द्रियां अथवा शक्ति   अकुल = विषय अथवा शिव

वर्ण = अक्षर   अ–वर्ण = अकार

नि-वर्ण = वर्ण रहित अर्थात् वैखरी से परे ।

चतुर्थ-सूत्र

इत्थं महानयोक्तदृशा सर्वशास्त्रप्रपञ्चोत्तीर्णत्वादवाच्यं किमपिमहोपदेशसाक्षात्कारमुभयपट्टकाकारसदसद्रूपद्वयनिवारणेन निस्तरङ्गपरव्योमसमावेशसर्वावेशविवर्जितमासूत्रितमहाशून्यतासमावेशमावेद्य, इदानीं युग्मोपसंहारात् कैवल्यफलं तन्मयतया उपवर्ण्यते

समस्त शास्त्रों के निर्वचन से परे, मनोजन्य तरङ्गों से रहित, शान्त, आवेश-रहित, द्वन्द्वातीत परव्योम में समावेश का व्याख्यान करने के पश्चात् अब युग्म-वृत्तियों के उपसंहार से कैवल्य की प्राप्ति का निरूपण करते हैं

युग्मग्रासान्निरवकाशसंविन्निष्ठा ॥ ४ ॥

युग्म के संहार से निरवकाश संवित्
में निष्ठा उत्पन्न होती है ॥४॥

पृथिव्यादिमहाभूतपञ्चकस्य एकैकस्मिन् ग्राह्यग्राहकतया युग्मवृत्त्युदयसंव्यवस्थितिः । तत्र गन्धप्राधान्यात् धरातत्त्वस्य पायुघ्राणरूपेण द्विप्रकारता । अप्तत्त्वस्य च रसप्रधानतयोपस्थरसनारूपेण द्वैविध्यम् । तेजस्तत्त्वस्य रूपप्राधान्यात् पादनेत्रभेदेन द्वयरूपता । वायुतत्त्वस्य स्पर्शप्राधान्यात् त्वक्पाणिस्वभावतो द्विधा गतिः । आकाशतत्वस्य शब्दप्राधान्यात् वाक्छ्रोत्रभेदेन द्विप्रकारतयैव बहुधात्वम् । अथवा

पृथ्वी आदि पञ्च महाभूतों में से प्रत्येक में ग्राह्य (विषय) ग्राहक (ग्रहण कर्ता) भाव रूप दो वृत्तियों की स्थिति है ।

पृथ्वी तत्त्व में गन्ध प्रधान होने से पायु तथा घ्राण दो वृत्तियों का उदय होता है। जल तत्त्व में रस की प्रधानता है, अतः उपस्थ तथा रसना इसके दो भेद हैं। रूप की प्रधानता से तेज तत्त्व पाद एवं नेत्र भेद से दो प्रकार का है। वायु तत्त्व की, स्पर्श–प्रधान होने से त्वचा एवं पाणि स्वभाव से द्विधा गति है। आकाश में शब्द की प्रधानता के कारण वाक् तथा श्रोत भेद से द्वय रूपता है। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व में दो वृत्तियों का उदय कहा गया है अथवा विकल्प में अन्य प्रकार से तत्त्वों का विभाजन करते हैं।

पृथिव्यप्स्वरूपौ भोग्यस्वरूपाववस्थितौ। तेजोवाय्वाख्यौ भोक्तृस्वभावौ संस्थितौ। आकाशं चैतद्युग्मान्तरस्थं सत्सुषिरतया सर्वप्रनाडिकान्तरोदितं च बहुधा विभक्तम्। पृथिव्यादिवाय्वन्तं भूतचतुष्टयं भोग्यरूपमाकाशं च भोक्तृस्वभावमिति वा। भोग्येऽपि भोक्ता सदैव तिष्ठति; भोक्तर्यपि भोगो नित्यं विभाति। एवमुक्तयुक्त्या प्रत्येकं पृथिव्यादिमहाभूतपञ्चकं युग्मेन द्वयविभूत्या अनारतं प्रोल्लसतीत्यभिप्रायः। अथवा प्रत्येकं व्यक्ताव्यक्ततया वहिरन्तरतया शान्तोद्रिक्ततया वा विभाति। एतत्पञ्चकस्थानसंस्थितयुग्मस्य 'ग्रासात्' संहरणात् 'निरवकाशसंविन्निष्ठा' निरवकाशा येयं संवित् तस्या निष्ठा सम्यगविपर्यस्ततया संस्थितिः।

पृथ्वी तथा जल भोग्य रूप हैं। तथा तेज एवं वायु भोक्ता रूप हैं। इन दोनों तेज एवं वायु के मध्य में स्थित आकाश समस्त नाडियों में व्याप्त होने से अनेक भागों में विभाजित है।

अन्य दृष्टि कोण से तत्त्वों के विभाजन का तृतीय विकल्प करते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु भोग्य रूप हैं। आकाश भोक्ता रूप है। सिद्धान्त है कि भोक्ता में भोग्य तथा भोग्य में भोक्ता सदैव स्थित रहता है।

एक चौथा विकल्प भी है । जिसके अनुसार पांचों तत्त्व व्यक्त-अव्यक्त, वहि:–अन्त: शान्त एवं उद्वेलित रूप में दो प्रकार से विभक्त हैं । उपर्युक्त प्रकार से दो वृत्तियोमें विभक्त पांचों महाभूतोंमें स्थित द्वन्द्वात्मक वृत्ति के संहार से निरवकाश संवित् की अपरिवर्तित रूप में सम्यक् प्रतिष्ठा हो जाती है ।

निरवकाशसंवित्त्वेन नापि सविकल्पसंविदुन्मेषैरवकाशो लभ्यते, नापि निर्विकल्पसंवित्स्वभावेन प्रवेशोऽधिगम्यते । इत्थमप्रमेयत्वान्निरुत्तरपरमाद्वयस्वभावत्वाच्च निरवकाशसंविदिहोच्यते । तस्या निष्ठा वरगुरुप्रदर्शितदृशा सततमच्युता गतिः केषांचिद्भवतीत्यर्थः । एवं द्वयात्मककुलकौलकवलनेन निरुपाधिनीरूपनिःस्वरूपतादात्म्यं भवतीत्यर्थः ।। ४ ।।

यह पर-संवित् तत्त्व पूर्ण रूप से अवकाश रहित है, अत: सविकल्प संवित् के उन्मेष के लिए यहाँ कोई स्थान शेष नहीं रह जाता है तथा स्वभाव से परा संवित् निर्विकल्पात्मक है; अत: सविकल्प के प्रवेश की भी संभावना नहीं है । तात्पर्य यह है कि परा संवित में सविकल्पक ज्ञान का न उन्मेष संभव है और न ही प्रवेश संभव है ।

इस प्रकार परासंवित् अप्रमेय अर्थात ज्ञानातीत होने के कारण एवं स्वाभाविक परम अद्वय रूप होने के कारण, निरवकाश कही जाती है । सिद्ध गुरु की कृपा से ही यहाँ किसी विरले को ही स्थायी गति प्राप्त होती है ।

उपर्युक्त प्रकार से द्वैतात्मक कुल तथा कौल अर्थात् इन्द्रियों तथा उनके विषयों के संहार से ही उपाधि रहित तथा रूपातीत तत्त्व में तादात्म्य की अनुभूति होती है ।

परम तत्त्वकी नाम तथा रूप हो उपाधियां हैं । यहाँ रूपात्मक उपाधि का निराकरण है । आगामी सातवें सूत्र में नामोपाधि से निवृत्ति का निरूपण कहा गया है । (४)

पञ्चम्-सूत्र

द्वयविगलनेन परतत्त्वावस्थितिं युग्मचर्चागमनिकया इह उक्त्वा, तदनु संघट्टकथा साक्षात्कारो निरूप्यते

पूर्व सूत्र में युग्म-वृत्ति के संहार से द्वैत के विनाश का व्याख्यान करके अब संघट्ट-कथा के साक्षात्कार का निरूपण करते हैं।

सिद्धयोगिनीसंघट्टान्महामेलापोदयः ॥ ५ ॥

सिद्ध तथा योगिनी के संघट्ट (संगम) से महा मेलाप का उदय होता है ॥५॥

सिद्धाश्च योगिन्यश्च ताः सिद्धयोगिन्यः विषयकरणेश्वरीरूपाः। तासां संघट्टः संगमो ग्राह्यग्राहकोभयसंश्लेषः परम्परागूरणक्रमेणालिङ्गनम्। तेन आलिङ्गनेन सदैव 'महामेलापोदयः' महामेलापस्याहन्तेदन्तात्मकद्वयविगलनात् निरुत्तरचिद्व्योम्नि सततं महासामरस्यात्मकस्य सर्वत्र प्रत्यक्षतया उदयः समुल्लासो भवति इत्यर्थः। वेद्यवेदकद्वयाप्रथनप्रवृत्त्या परमाद्वयसमावेशः सर्वत्रावस्थित इत्युक्तं भवति ॥ ५ ॥

यहाँ सिद्ध से तात्पर्य है विषय तथा योगिनी साधन रूप इन्द्रियां हैं। इंद्रियाँ अपने विषय को ग्रहण करने के कारण ग्राहक नाम से कही जाती हैं तथा विषय जिनका ग्रहण किया जाता है ग्राह्य

पदार्थ हैं। ग्राह्य तथा ग्राहक अर्थात् विषय एवं इन्द्रियों के संगम से परस्पर पूर्ण अलिङ्गन होने पर महा मेलाप का उदय होता है।

महा मेलापः—

अहंता[1] तथा इदंता दोनों के विलय हो जाने पर परम महा-शून्यता में सामरस्य की निरंतर स्फूर्ति होती रहती है। अर्थात् ज्ञाता तथा ज्ञेयात्मक द्वैत प्रवाह के अन्त हो जाने से परम अद्वैत तत्त्व में निरन्तर समावेश हो जाता है।

---

१ अहंता तथा इदंता का विवेचन प्रथम सूत्र की हिन्दी टीका में देखिए।

षष्ठम्-सूत्र

उभयविगलनेन सदैव महामेलापोदयमुक्त्वा, तदनु कञ्चुकत्रयोल्लङ्घनेन निरुत्तरपदप्राप्ति कटाक्षयन्ति

अहंता तथा इदंता दोनों के विलय से महामेलाप का व्याख्यान करने के पश्चात अब परम पद की प्राप्ति का निरूपण करते हैं ।

त्रिकञ्चुकपरित्यागान्निराख्यपदावस्थितिः ॥ ६ ॥

तीनों कञ्चुकों के परित्याग से

निराख्य पद में अवस्थिति होती है ॥६॥

त्रिकञ्चुकस्य भाविकभौतिकशून्यभेदभिन्नस्य । तत्र भाविकं शब्दाद्यहंकारपर्यन्तं तन्मात्ररूपं, भौतिकं पृथिव्यादिरूपं, शून्यं निरीहाख्यं वासनास्वरूपं च । अथवा भाविकं घटाकरं बाह्यं ग्राह्यविषयरूपं, भौतिकं पुनरान्तरमिन्द्रियात्मकं ग्रहणरूपं, शून्यं तदुभयमध्यमाकाशम् । अथवा भाविकं स्वप्नावस्था सृष्टिरुच्यते, भौतिकं जाग्रत्प्रथा स्थितिर्निगद्यते, शून्यं सुषुप्तदशा संहारोऽभिधीयते । इत्थंसंस्थितस्य त्रिकञ्चुकस्य 'परित्यागात्' संन्यासात् 'निराख्यपदावस्थितिः' निर्गता आख्या अभिधानं यस्य असौ निराख्यः अव्यपदेश्यमनुत्तरं वागुत्तीर्णं परं धाम, तस्मिन् सर्वोत्तीर्णानिकेतनपरमाकाशेऽवस्थितिः सदैव अपरिच्युतस्वभावनिष्ठा भवतीति संबन्धः ॥ ६ ॥

कञ्चुक मायात्मक आवरण है जिसके द्वारा सर्व-व्यापी असीम ब्रह्म दिक, काल तथा आकार की सीमा के अन्तर्गत संकुचित हो जाता है ।

भाविक, भौतिक, तथा शून्य नामक तीन कञ्चुक हैं। टीका-कार ने इनकी तीन प्रकार से व्याख्या की है।

प्रथम विकल्प

(१) भाविक :—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन तथा बुद्धि अहङ्कार तन्मात्र–रूप भाविक कञ्चुक है। (२) पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्च तत्त्वात्मक भौतिक कञ्चुक है। (३) निरीह (इच्छा से परे) केवल वासना स्वरूप शून्य कञ्चुक है।

द्वितीय विकल्प

घट के आकार के समान वाह्य, इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य विषयों का रूप भाविक, तथा (२) इन्द्रियात्मक ग्रहण रूप भौतिक कञ्चुक है (३) इन दोनों के मध्यमें स्थित आकाश रूप तीसरा शून्य कञ्चुक है।

तृतीय विकल्प

भाविक कञ्चुक स्वप्नावस्था है जो सृष्टि के नाम से कही जाती है (२) भौतिक कंचुक जाग्रदावस्था रूप स्थिति है। तथा (३) संहारात्मक सुषुप्ति–दशा शून्य कञ्चुक है।

(७) इस प्रकार संस्थित कञ्चुकों के परित्याग से निराख्य अर्थात् अभिधान से रहित, वाणी से परे, अनिर्वचनीय पद में स्वाभाविक स्थायी निष्ठा हो जाती है।

सृष्टि, स्थिति तथा लय रूप तीन कञ्चुक हैं जिनके लय हो जाने पर दिक्–काल-आकार से रहित परम शून्य आकाश में निष्ठा उत्पन्न होती है। यह तुर्य अवस्था है, जहां वाणी की पहुंच नहीं है। यह नामोपाधि से मुक्त अवस्था है।

सप्तम-सूत्र

इत्थं कञ्चुकत्रयोल्लङ्घनेन तुर्यपदप्राप्ति निरूप्य, इदानीं सर्ववाक्प्रथासु निरावरणासु स्वरभूतिविजृम्भैव प्रथते सदैव,- इति निरूपयन्ति

पूर्व सूत्र में तीनों कञ्चुकों के परित्याग से तुर्यावस्था की प्राप्ति का व्याख्यान किया गया है। अब समस्त वाक् प्रवाह में शुद्ध स्वर के विस्तार का निरूपण करते हैं।

वाक्चतुष्टयोदयविरामप्रथासु स्वरः प्रथते ॥ ७ ॥

वाक् चतुष्टय के उदय तथा विराम की
परम्परा में स्वर ही प्रवाहित होता है ॥ ७ ॥

आदौ तावत् वाक्चतुष्टयं निर्णीयते। निरावरणनिरवकाशोदयनिरुत्तरनिस्तरङ्गपरमनभसि उच्छलत्किंचिच्चलनात्मकप्रथमस्पन्दविकासस्वभावा वर्णरचनां मयूराण्डरसन्यायेन अद्वयमहासामरस्यतया अन्तर्धारयन्ती परेति प्रथिता। सैव च अनाहतनादस्वरूपतामवाप्ता निर्विभागधर्मिणी समस्तवर्णोदयं वटधानिकावदन्तर्धारयन्ती द्रष्टृस्वभावा पश्यन्तीति व्यपदेश्या। सैव च संकल्पविकल्पनिवहनिश्चयात्मबुद्धिभूमिं स्वीकृतवती वर्णपुञ्जं शिम्बिकाफलन्यायेन अन्तर्धारयन्ती मध्यमा इत्यभिहिता। सैव हृत्कण्ठतात्वादिस्थानकरणक्रमेणाहता सती वर्णविभवमयश्लोकादिवत् भेदरूपं प्रकटयन्ती रूपादिसमस्तविश्वप्रथां च व्यक्ततामापादयन्ती वैखरीत्युक्ता। इत्थं निरवकाशात् वाक्चतुष्टयमविरतमनिरोधतया प्रथते। एवमीदृक्स्वभाववाक्चतुष्टयस्य

उदयश्च विरामश्च तावुदयविरामौ सृष्टिसंहारौ, तयोः प्रथा व्यक्ताव्यक्ततया सदैव अविरतमुल्लसन्त्यः स्फुरन्त्यः, तासु 'स्वरः'अनाहतहतोत्तीर्णमहानादोल्लासविकासस्वभावः'प्रथते' सविकल्पनिर्विकल्पसंविदुत्तीर्णपरवियदुदयमेव प्रकाशितं सततमकरणप्रवृत्त्या प्रयातीत्यर्थः। इत्थं नानाभेदोल्लासप्रकाशरूपेषु वर्णनिवहोदयेषु मध्यात् प्रतिवर्णान्तरे वाक्चतुष्टयक्रमेण अखण्डितवृत्त्या स्वस्वरूपमपरित्यज्य यथामुखोपदिष्टनीत्या स्वर एव प्रथते,–इत्युक्तं भवति ॥७॥

वाक् चतुष्टय :—

प्रथम वाणी के चार भेदों का निरूपण करते हैं:—

(१) परा (२) पश्यन्ती, (३) मध्यमा (४) वैखरी नामक चार भेद वाणी के हैं।

परा :—

आवरण, अवकाश, एवं तरङ्गों से रहित परम शून्य आकाश में उच्छलनात्मक किञ्चित् सञ्चालन से प्रथम स्पन्द का आविर्भाव होता है, जो परा वाणी के नाम से सम्बोधित है।

जिस प्रकार अण्डे के श्वेत एवं पीले रस में मयूर का वर्ण वैचित्र्य अन्तर्निहित है, उसी प्रकार वर्णों के अनेक रूपों का परा वाणी के अन्तः में सामरस्यात्मक अभिन्न समावेश होता है।

पश्यन्ती :—

अनाहत-नाद स्वरूप में अवतरित वही परा वाणी दृष्टा–स्वभाव होने के कारण पश्यन्ती नाम से कही जाती है; जिसमें वट धानिका के समान समस्त वर्ण-समूह अभिन्न रूप में अन्तर्निहित होते हैं।

मध्यमा :—

संकल्प–विकल्पात्मक ज्ञान समूह जब निश्चयात्मक बुद्धि–भूमिका को प्राप्त करता है तब वही परा वाणी सेम के वीज के समाम वर्ण समूह को अपने अन्तः में धारण करती है। अर्थात् जिस प्रकार सेम की फ़ली में वीज के कणों की पृथक्-पृथक् स्थिति हो जाती है, किन्तु छिलके से आवृत होने के कारण वाहर स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर नहीं होते हैं; वैसे ही वर्णों के निश्चयात्मक पृथक् स्वरूप का सर्व प्रथम अन्तः में आविर्भाव होता है; किन्तु बाहर स्पष्ट दर्शन नहीं होता है। वाणी के विकास की यह अवस्था मध्यमा नाम से कही जाती है।

वैखरी :—

विकास की अन्तिम अवस्था में जव वही परा वाणी हृदय, कण्ठ, तालु आदि स्थानों अर्थात् अवयवों से आहत होकर साधन-क्रम से वर्ण-भेद को स्पष्ट प्रकट करती है, तव वह वैखरी नाम से कही जाती है। इस अवस्था में नाद का वर्णों के रूप में पूर्ण विकास हो जाता है तथा समस्त विश्व के ज्ञान-प्रवाह एवं, वेद शास्त्र आदि का अभिव्यञ्जन होता है। वैखरी रूप में वाणी तथा वर्णों के वैभव की पूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है ।

इस प्रकार निरवकाश संवित् तत्व से अनवरुद्ध, अविरत चार रूपों में वाणी का प्रवाह होता रहता है।

उपर्युक्त स्वभाव से युक्त वाक-चतुष्टय के सृष्टि तथा संहारात्मक परम्परा के व्यक्त अथवा अव्यक्त स्फुरण में स्वर अर्थात् उल्लास–विकासशील अनाहतहतोत्तीर्ण-महानाद ही प्रवाहित होता है। तात्पर्य है कि सविकल्प-निर्विकल्प संवित् से परे परम आकाश किसी साधन के आश्रय के बिना स्वाभाविक रूप में प्रकाशित होता है।

इस प्रकार वाक्चतुष्टय क्रम में गुरु-मुख से नाना रूपों में प्रकटित वर्ण समूह के मध्य प्रत्येक वर्ण के अन्तर में अखण्डित–वृत्ति से मूल स्वर का ही प्रवाह होता है।

अष्टम-सूत्र

इति वाक्चतुष्टयोदयक्रमेण निरावरणस्वरोदयः सर्वत्र सर्वकालं स्फुरति,-इति निरूप्य, इदानीं रसत्रितयाभोगे सति परं धामैव निरुत्तरं चकास्ति,-इति निगद्यते

संदर्भः—

इस प्रकार वाक् चतुष्टय के उदय क्रम से सर्वत्र अनवरत निरावरण स्वर के स्फुरण का व्याख्यान कर अब रस त्रय के आभोग से पर-ब्रह्म की प्राप्ति का निरूपण करते हैं।

रसत्रियास्वादनेनानिच्छोच्छलितं
विगतबन्धं परं ब्रह्म ॥८॥

रस त्रय के आस्वादन से विगत-बन्ध
(मुक्त-स्वभाव) परब्रह्म का ही निरिच्छ
(लीलात्मक) उच्छलन (स्फुरण) होता है ॥ ८ ॥

रसत्रयं गुरुमुखोदितदृशा मनागीषत् प्रकाश्यते। मूलाधारपयोधराधारप्रथिताकृत्रिमरसत्रितयाभोगे सति 'अनिच्छोच्छलितं' निष्कामतया प्रोल्लसितं 'विगतबन्धं' विरहितभेदप्रथात्मकसंसारावग्रहं शान्तचित्रोभयविधब्रह्म-स्वरूपसमुत्तीर्णं किमपि निरुत्तरप्रकृष्टतरामर्शसंवित्स्वभावं परं ब्रह्मैव सततमनस्तमितस्थित्या विजृम्भत इत्यर्थः। एतदेव रहस्यक्रमेणोच्यते। मूलाधारस्तु प्रथमप्रतिभोल्लास-महानादविशेषः सृष्टिस्वभावः भेदाभेदात्मकसंवित्पदार्थ-प्रथमाश्रयभित्तिभूतत्वात्। पयोधरस्तु पयः समस्ताप्याय-कत्वात् सर्वाश्रयसंवित्स्वरूपं तदेव धारयति स्थितिप्ररोहमव-लम्बयति यः स्पन्द आद्योन्मेष एव सर्वपदार्थावभासनात् स्थितिरूपः। आधारस्तु जडाजडभावपदार्थोपसंहारकत्वा-

त्प्रत्यावृत्तिसंवित्स्वभावः संहारः । एतत्त्रयोद्भूतं रसरूपं तत्तदनुभवचमत्कारसामरस्यमास्वाद्य स्वात्मनि अकृतकख-मुद्रानुप्रवेशात् विमृश्य, तुर्यस्वभावो महासंहाराख्योऽनवरतं परमाद्वयतया विभातीति रहस्यार्थः ॥८॥

मूलाधार, पयोधर एवं आधार नामक तीन रस हैं; जिनका स्वाभाविक उपयोग (लय) हो जाने पर प्रयोजन रहित लीलया प्रोल्लसित भेद–ज्ञान रहित, शान्त एवं विचित्र उभय विध ब्रह्म–स्वरूप से परे स्वाभाविक परम संवित् रूप ब्रह्म ही निरन्तर प्रकाशित होता है ।

रसत्रय का पृथक् निरूपण करते हैं । प्रतिभा के प्रथम स्पन्द महानाद विशेष का नाम मूलाधार है । यह भेदा-भेदात्मक संवित् पदार्थ का आदि आश्रय होने के कारण स्वभावतः सृष्ट्यात्मक है ।

पयोधर समस्त सृष्टि का पोषक होने के कारण सब के आधार–भूत संवित् को धारण करता है । स्थिति के विकास का अवलम्बन यह प्रथम उन्मेष अर्थात् स्पन्द ही समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने के कारण स्थिति रूप है ।

आधार नामक तृतीय रस जड़ तथा अजड़-भाव पदार्थों का संहारक होने के कारण प्रत्यावृत्ति-संवित्-स्वभावात्मक संहार है । अर्थात् सहार दशा में समस्त पदार्थों का अपने मूल स्वरूप में प्रत्यावर्तन हो जाता है । अतः संहारात्मक यह रस आधार नाम से कहा गया है । सृष्टि, स्थिति तथा लयात्मक तीनों रसों के अनु-भव के चमत्कार से आविर्भूत सामरस्य के उपभोग से साधक के अन्तः में स्वाभाविक परम शून्य अवस्था की स्थापना हो जाती है, जिसके कारण रसत्रय के स्वरूप का विमर्श रूप, तुर्य-स्वभाव महासंहार नामक परम अद्वैत रस अनवरत प्रकाशित होता है ।

तात्पर्य है कि रसत्रय के संहार से उद्भूत शून्य अवस्था में सामरस्यात्मक चतुर्थ रस की अनुभूति होती है, जो तुर्य-स्वभाव है । तुर्यावस्था में सृष्टि, स्थिति, लयात्मक प्रवाह का संहार हो जाने पर मुक्त–स्वभाव अद्वय परब्रह्म का प्रयोजन रहित लीला-त्मक उच्छलन होता है । अर्थात् देश, काल, आकार. वस्तु, उपादान, सामग्री से निरपेक्ष वस्तु-रूप से अवभासन होता है ।

नवम-सूत्र

एवं निरवकाशभङ्ग्या रसत्रितयचर्चासंप्रदायं निरूप्य, इदानीं देवीचतुष्टयकथासाक्षात्कारः प्रकाश्यते

इस प्रकार निरवकाश अनुभूति से रसत्रय का निरूपण करके इस सूत्र में देवी चतुष्टय के साक्षात्कार को प्रकाशित करते हैं।

देवीचतुष्टयोल्लासेन सदैव
स्वविश्रान्त्यवस्थितिः ॥९॥

देवी चतुष्टय के उल्लास से अनवरत आत्म-विश्रान्ति में समावेश हो जाता है ॥९॥

देवीचतुष्टयं क्षुत्तृडीर्ष्यामननरूयम्। तत्र च सर्वग्रासनिरतत्वात् क्षुदेव महासंहारः। सर्वशोषकत्वात् तृडेव संहारः। ईर्ष्या द्वयप्रथापादिका ग्राह्यग्राहकपरिग्रहग्रथिता स्थितिरूपा। मनना च संकल्पविकल्पोल्लासरूपा सृष्टिः। एतद्रूपस्य देवीचतुष्टयस्य च 'उल्लासेन' घस्मरसंवित्प्रवाहप्रवृत्त्या प्रथनेन 'सदैव' सर्वकालं प्रत्येकं चातुरात्म्येनोद्योगाभासचर्वणालंग्रासवपुषा स्वस्वरूपावस्थितिः पञ्चमपदातिशायिनी निरवकाशसंविन्निष्ठा स्थितेत्यर्थः ॥९॥

क्षुत्, तृड्, ईर्ष्या, मनना नामक चार शक्तियों को देवी चतुष्टय नाम से सम्बोधित किया गया है।

क्षुत् अर्थात् क्षुधा शक्ति समस्त पदार्थों की भक्षक होने के कारण महासंहार नाम से कही गई है।

तृड् अर्थात् तृषा शक्ति सर्व शोषक होने के कारण संहार है।

ग्राह्य-ग्राहक रूप अर्थात् इन्द्रियाँ तथा उनके विषय ईर्ष्याशक्ति हैं, जो द्वैतात्मक अनुभूति को ग्रहण करने के कारण स्थिति रूप है। ईर्ष्या अर्थात् प्रतिद्वन्द्विता से ही जगत् की स्थिति है; अत ईर्ष्या शक्ति स्थित्यात्मक है।

चतुर्थ शक्ति मनना है, जो संकल्प-विकल्प की जननी होने से सृष्टि रूप है।

इस प्रकार महासंहार, संहार, स्थिति तथा सृष्टि रूप चार शक्तियां हैं। अन्य यह चार शक्तियाँ तुर्य, सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत् नाम से कही गई हैं।

उपर्युक्त प्रकार से संहारात्मक-संवित्-प्रवाह में अर्थात् चतुर्धा उद्योग के आभास से उद्भूत सर्वसंहारात्मक रूप में चारों शक्तियों के प्रकृष्ट प्रवर्तन के कारण साधक का आत्मस्वरूप में प्रवेश हो जाता है। अर्थात् निरवकाश परम संवित् तत्त्व में स्थायी स्थिति हो जाती है। निष्ठात्मक यह पाँचवीं अवस्था है।

दशम-सूत्र

इत्यनेन सूत्रेण देवीचतुष्टयकथाक्रमं प्रकाश्य, इदानीं द्वादशवाहचक्ररहस्यं निरूप्यते

सन्दर्भ—

देवी चतुष्टय का क्रम से सैद्धान्तिक निरूपण करने के पश्चात् द्वादश-वाह (चक्र) रहस्य का व्याख्यान करते हैं।

द्वादशवाहोदयेन महामरीचिविकासः ॥१०॥

द्वादशवाह के उदय से महामरी-
चिकाओं का विकास होता है ॥१०॥

मनःसहितं श्रोत्रादिबुद्धीन्द्रियपञ्चकं, तथा बुद्धिसहितं वागादिकर्मेन्द्रियपञ्चकम्, एतदुभयसमूहो 'द्वादशवाहः'। तस्य उल्लासः अहेतुकेन केनापि अतिविश्रृङ्खलतरधाम-निरुत्तरनिस्तरङ्गपरस्वातन्त्र्यवृत्त्या घस्मरसंवित्प्रवाहः। तेन महामरीचीनां निरावरणक्रमेण प्रत्येकस्मिन् प्रवाहे उद्योगावभासचर्वणालंग्रासविश्रान्तिरूपाणां महासंविद्रश्मीनां 'विकासः' नियतानियतचिदचित्प्रथाविगलनेन नित्यविकस्वरस्वभावो महाप्रबोधः सततमविनश्वरतया सर्वत्र सर्वतः सर्वदैव स्थित इति महावाक्यार्थः ॥१०॥

द्वादशवाह—

मन सहित श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा बुद्धि सहित पाँच कर्मेन्द्रियों के समूह को द्वादशवाह के नाम से सम्बोधित किया गया है।

कारणरहित, अत्यन्त उच्छृङ्खल, निस्तरङ्ग (शान्त) परम स्वतन्त्र किसी वृत्ति के द्वारा संहारात्मक संवित् के प्रवाह को द्वादशवाह का उदय नाम से कथन किया गया है।

इस सहारात्मक-संवित् के प्रत्येक प्रवाह में अवभासित उद्योग (स्फुरण) की संहारक, विश्रान्ति रूप महामरीचिकाओं का विकास होता है। अर्थात् नियत-अनियत, चित्-अचित् द्वन्दात्मक ज्ञान-प्रवाह का अन्त हो जाने पर नित्य, विकास-शील नाद-स्वरूप महाप्रबोध का सवर्त्र, स्थायी उल्लास होने लग जाता है।

टिप्पणी—परम गुरु श्री स्वामीजी के मतानुसार प्राण, अग्नि, माया, विन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना द्वादशवाह हैं जिसके परे शून्य दशा में महाप्रवोध का साक्षात्कार होता है।

एकादश-सूत्र

इत्यकरणसिद्धं सद्वैव निरावरणपदसमावेशं द्वादशवाहोदयदृशा प्रकाश्य, इदानीं चर्यापञ्चकसंप्रदायं निरूपयन्ति

संदर्भ:—

द्वादशवाह के प्रवाह के उदय से निरिन्द्रिय निरावरण संवित् पद में समावेश का निरूपण करने के पश्चात् अब चर्या पञ्चकका व्याख्यान करते हैं।

चर्यापञ्चकोदये निस्तरङ्गसमावेशः ॥११॥

चर्या पञ्चक के उदय से तरङ्ग रहित
(शान्त) तत्व में समावेश होता है ॥११॥

चर्यापञ्चकं वानाश्रितावधूतोन्मत्तसर्वभक्ष्यमहाव्यापकस्वरूपम्। तस्य उदयो नियतानियतशक्तिसमूहान्तरोदितो विकासस्वभाव उल्लासः। तस्मिन्सति 'निस्तरङ्गसमावेशः' आणव - शाक्त - शाम्भवोदयरूपसमस्तरङ्गपरिवर्जितसमावेश लक्षणनिरुत्तरसमावेशधर्मैव प्रथत इत्यर्थः। चर्यापञ्चकक्रमं च वितत्य निरूपयामि। तत्र अनाश्रिता निराधारत्वात् परमाकाशरूपा श्रोत्रसुषिरप्रदेशगमनेन स्वग्राह्यवस्तूपसंहरणाय उद्‌गता। अवधूता च अनियततया सर्वत्रविहरणदृक्शक्तिमार्गेण स्वसंहार्यस्वीकरणाय उन्मिषिता।

उन्मत्ता च विचित्तवत्स्वतन्त्रतया ग्राह्यग्राह्यसंबन्धाविवक्षया स्वविषयग्रहणाय प्रथिता। सर्वभक्ष्या भक्ष्यसंस्कारनिखिलकवलनशीला स्वसंहार्यपदार्थग्रसनाय उदिता। सर्वव्यापिका च त्वग्वृत्तिगमनिकया निखिलव्यापकत्वात् अशेषस्पर्शस्वीकरणाय उन्मिषिता; - इति चर्यापञ्चकोदयः ॥११॥

अनाश्रिता, अवधूता, उन्मत्ता, सर्वभक्ष्या, महाव्यापिका, नामक पाँच चर्याएँ हैं। नियत (नियन्त्रित) अथवा अनियत, (अनियन्त्रित) शक्ति-समूह के अन्तर में पाँच विकास शील चर्याओं का उदय होता है, जिसके कारण सर्वोत्कृष्ट समावेशात्मक धर्म की अनुभूति होती है। यह अनुभूति आणव, शाक्त तथा शाम्भव उपाय-जन्य अनुभूति की तरङ्गों से उत्कृष्ट तथा भिन्न है।

प्रत्येक चर्या के स्वरूप का पृथक निरूपण करते हैं।

(१) अनाश्रिता चर्याः—आश्रय रहित होने के कारण परम शून्य आकाश रूप है जो श्रोत्रेन्द्रिय-गत अवकाश में गमन करने के कारण अपने ग्राह्य विषय शब्द को लय करने के लिए प्रकट होती है।

(२) अवधूता चर्याः— अनियत अर्थात् अनियन्त्रित होने के कारण सर्वत्र विहरणशील दृक्-शक्ति के मार्ग से अपने अनुभूत विषय को संहार करने के लिए स्फुरित होती है।

(३) उन्मत्ता चर्याः— विक्षिप्त के समान स्वतन्त्रता से ग्राह्य ग्राहक (ज्ञाता-ज्ञेय) रूप अपने विषय को ग्रहण करने के लिए आविर्भूत होती है।

(४) सर्व-भक्ष्या चर्याः— समस्त पदार्थों की संहारक होने के कारण अपने संहार्य विषय को ग्रसने के लिए प्रकट होती है।

(५) सर्व-व्यापिका चर्या का, त्वचा-वृत्ति से निर्गमन करने के कारण समस्त स्पर्श-वृत्ति का संहार करने के लिए उदय होता है।

इस प्रकार चर्या। पञ्चक के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक तन्मात्राओं का संहार हो जाता है; जिसके कारण मनोगत तरङ्गों से रहित परम शून्यात्मक स्थिति का आविर्भाव होता है।

प्रत्येक इन्द्रिय-जन्य वृत्ति के कार्य की संहारक शक्ति भी उस इन्द्रिय में ही उत्पन्न होती है जो चर्या नाम से यहाँ कही गयी है।

द्वादश-सूत्र

सततसिद्धचर्याक्रमं निरूप्य, इन्दानीं निर्निकेतपरज्ञान-प्रकाशावलम्बनेन पुण्यपापनिवृत्तिकथां निरूपयन्ति ।

संदर्भः—

अनवरत सिद्ध-चर्या क्रम का पूर्व सूत्र में निपरूण करके अब दिक्-काल—आकार से अतीत परम ज्ञान के आश्रय से पाप-पुण्य से निवृत्ति-कथा का उपदेश करते हैं ।

महाबोधसमावेशात्पुण्यपापासंबन्धः ॥१२॥

महाबोध में समावेश से पुण्य तथा
पाप से मुक्ति हो जाती है । ॥२॥

'महाबोधः' च ज्ञातृज्ञानज्ञेयविकल्पसंकल्पकालुष्य-निर्मुक्तो निःशमशमानिकेतनिर्बाधमामप्रथात्मकः परतरज्ञान-स्वभावः क्रमाक्रमोत्तीर्णत्वात् महागुरुभिः साक्षात्कृतः । तस्य 'समावेशः' अकरणक्रमेण यथास्थितसंनिवेशेन त्यागस्वीकार-परिहारतः सततमच्युतवृत्त्या तद्रूपेण स्फुरणम् । तस्मात् 'महाबोधसमावेशात्' पुण्यपापयोः शुभाशुभलक्षणकर्मणोर्द्वयोः स्वगफलद्वय वितरणशीलयोः 'असंबन्धः' असंश्लेषः असंयो-गश्च अनवरतं जीवत एव वीरवरस्य अपश्चिमजन्मनः कस्यचित्सर्वकालमकृतकानुभवरसचर्वणसंतृप्तस्य भवभूमावेव

बन्धमोक्षोभयोत्तीर्णमहामुक्तिः करतलामलकवत् स्थितेत्यर्थः ॥१२॥

महाप्रबोधः—

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तथा संकल्प-विकल्पात्मक द्वैत-ज्ञान परम्परा से मुक्त, अनस्तमित शान्ति से युक्त, दिक्-कालादि से अनवच्छिन्न सर्वत्र स्फुरित, क्रम-अक्रम साधन से रहित, स्वाभाविक, परात्पर ज्ञान-स्वभाव "महाबोध" का साक्षात्कार, परम गुरु जनों के द्वारा होता है।

समावेशः-

वस्तु के त्याग तथा स्वीकार की परम्परा से रहित, किसी साधन के बिना, स्वाभाविक रूप में अच्युत वृत्ति से ज्ञानात्मक-स्फुरण को समावेश शब्द के द्वारा अभिव्यञ्जित किया गया है। इस प्रकार लक्षित महाबोध में समावेश के कारण स्वाभाविक अनुभवरस से सतत तृप्त वीर साधक का इस पृथ्वी पर ही जीवन काल में बन्ध मोक्षात्मक द्वन्द्व से परे सहज महामुक्ति दशा में प्रवेश हो जाता है।

त्रयोदश-सूत्र

स्वस्वरूपप्राप्तिपूर्वकं पुण्यपापतिरस्कारचर्चाक्रममुक्त्वा, इदानीं स्वरसिद्धमौनकथामुद्घाटयन्ति

संदर्भ :—

स्वरूप की प्राप्ति एवं पुण्य-पाप से मुक्ति की चर्चा करके अब स्वर द्वारा सिद्ध योग का प्रतिपादन किया जाता है।

अकथनकथाबलेन महाविस्मयमुद्रा-
प्राप्त्या खस्वरता ॥ १३ ॥

अ-कथन-कथा के बल से महाविस्मय-मुद्रा की प्राप्ति के द्वारा ख-स्वरता का आविर्भाव होता है।

अकथनकथाबलं गुरुमुखोपदिष्टसंप्रदायक्रमेण मनागिह चर्च्यते। अस्य अकारस्य हतानाहतानाहतहतानाहतहतोत्तीर्णतया चतुर्धोदितरूपस्य कथनं वक्राम्नायचर्चासंनिवेशनमित्यकथनम्। तत्र हतस्तावत् कथ्यते—हृत्कण्ठताल्वादिस्थानकरणसंनिवेशैर्हतः अकारादिहकारपर्यन्तनानापदार्थावभासकः। अनाहतश्चास्वरमूलोल्लसितपरनादविस्फारस्तन्त्रीमध्यमास्वरसंकेतक आकण्ठकूपान्तादुपचारतः कृतप्रतिष्ठः। अनाहतहतश्च उभयाश्रितोन्मिषितोऽहतो विश्रान्तशष्कुलीश्रवणगोपनोद्भिन्नप्रथः श्रवणयुग्ममध्यवर्त्याकाशात् तत्त्वप्रतिबिंबतत्त्वदेहतोऽपि हतोऽनाहतहतः। अनाहतहतोत्तीर्णश्च महानिरावरणधामसमुल्लसितोऽविकल्प ईषच्चलत्तात्मक महास्पन्दप्रथमकोटिरूपः स्वरः संकोचविकासविरहात्

परमविकासरूपः अस्पर्शधर्मानुच्चार्यमहामन्त्रप्रथात्मकः। तथा च अनाहतहतोत्तीर्णो यः स श्रृङ्गाटकाकारो रौद्रीस्वभावस्तुर्यः। अनाहतहतश्च अनच्ककलात्मकवक्रसंस्थानो वामारूपः सुषुप्तः। अनाहतश्च बाहुरूपाम्बिकाशक्तिर्या आगमे निरूपिता तत्स्वरूपः स्वप्नः। हतश्चायुधाकारो ज्येष्ठास्वभावो जाग्रत्। इत्येतच्चतुष्टय-स्वभावस्य आद्यवर्णस्य कथनं पारम्पर्यमुखयुक्तिविशेषः। तस्य बलं हतादिरूपत्रयोल्लसितानाहतहतोत्तीर्णरावस्फुरत्तारूपं वीर्यं तेन 'अकथनकथाबलेन'। तत्रैवमकथनं वाक्प्रपञ्चोत्तीर्णमकथनमेव कथनं संक्रमणक्रमेण निर्निकेतस्वरूपावधानं तदेव बलम कृतकस्फारसारम्। तेन संक्रमणं च मनागिह वितन्यते। प्राणपुर्यष्टकशून्यप्रमातृनिविष्टाभिमानविगलनेन निस्तरङ्गप्रविकचचिद्धामबद्धास्पदो दैशिकवरो निःस्पन्दानन्दसुन्दर परमशून्यदृग्बलेन कार्यकरणकर्मनिरपेक्षतया यद्यत्किंचित्सर्वगतात्मस्वरूपप्रतिपत्तौ अवलोकयति तत्तत्परतरचिन्मयमेव सततं भवति,—इति नास्त्यत्र सन्देहः। तथा चान्यद्व्याख्यान्तरमाह-कथनं तावत् षड्दर्शनचतुराम्नायमेलापक्रमसमूहेषु पूजनक्रमोदितनियतानियतदेवताचक्रावलम्बनेन स्फुरति। इह पुनः पूज्यपूजकपूजनसंबन्धपरिहारेण श्रीमद्वातूलनाथादिसिद्धप्रवरवक्राम्नायदृशा सततसिद्धमहामरीचिविकास एव सर्वोत्तीर्णस्वरूपाविभिन्नः सर्वदैव सर्वत्र विराजते,—इत्यकथनकथाबलं तेन महाविस्मयप्राप्तिर्भवतीति सम्बन्धः। 'महाविस्मयः' च विगतोविनष्टाः स्मयो मितामिताहंकारदर्पः सर्वोल्लंघनवृत्या स्वरूपानुप्रवेशः। अथ च महाविस्मयः स्वपरभेदविस्मरणात् झटिति निरन्तरनिरर्गलखेचरवृत्तिसमावेशः। सैव सर्वमुद्राणां क्रोडीकरणात् 'मुद्रा' तस्या

मौनपदसमावेशमयता। तया हेतुभूतया 'खस्वरता' त्रयोदशकथाकथनसामरस्यात्मकः खस्वरस्तस्य भावः सामरस्यप्रथनं भवतीत्यर्थः। खस्वारस्तु खमपि भाव शून्यमपि स्वेन राति व्याप्नोति स्वीकरोति आदत्ते,-इति खस्वरः ॥१३॥

गुरु के द्वारा उपदिष्ट परम्परा के अनुसार अ—कथन-कथा-बल का संक्षिप्त निरूपण टीका में किया गया है। वाक्य रचना की शैली तथा विषय की जटिलता के कारण यथा शब्द अनुवाद में कठिनाई के कारण यहाँ थोड़े विस्तार से विवेचन किया जा रहा है।

अकार वर्णमाला का प्रथम अक्षर है। आगम शास्त्र की परम्परा के अनुसार इसका चार रूपों में विभाजन किया गया है। (१) हत (२) अनाहत (३) अनाहत—हत (४) अनाहत-हतोत्तीर्ण

प्रत्येक का प्रथक २ निरूपण करते हैं।

(१) हतः—

शरीर—गत हृदय, कण्ठ, तालु आदि स्थानों के साधन से नाद वर्णात्मक नाना रूपों में प्रकट होता है। मुखगत संन्निवेश के कारण यह हत नाम से कहा जाता है। अकार से हकार पर्यन्त वर्ण समूह नाना पदार्थो का अवभासक है।

(२) अनाहतः—

अकार स्वर के मूल में स्फुरित परनाद का यह विस्तृत रूप मध्यमा वाणी का द्योतक है, जिसका उदय कण्ठ से लेकर नाभि पर्यन्त होता है, इसका उच्चारण केवल आन्तरिक होता है, मुख से वाहिर नहीं। अतएव उपचार से स्वर के इस स्वरूप को अनाहत नाद कहा जाता है।

(३) अनाहत-हतः— नाद के दो रूप अनाहत एवं हत पर आधारित होने के कारण यह अनाहत-हत नाम से कहा जाता है। यह कण्ठ आदि साधनों से आहत न होने के कारण अनाहत है। इसकी अनुभूति कर्ण के विवरों को बन्द कर लेने पर होती है। किन्तु श्रवण के मध्यवर्ती आकाश में सञ्चार होने के कारण यह कर्णगत देह को भी स्पर्श करता है, अतः इसको आहत भी कह सकते हैं। अतएव यह दोनों साधनों की सहायता से स्फुरित होने के कारण अनाहत-हत नाम से कहा जाता है।

(४) अनाहत-हतो-त्तीर्ण—नाद का स्फुरण महाशून्य परम आकाश में होता है। विकल्प ज्ञान से रहित किञ्चित् सञ्चलनात्मक यह महास्पन्द प्रथम भासित स्वर है। संकोच एवं विकासात्मक परिवर्तनों से रहित होने के कारण यह परम विकास रूप है। तथा साधन रूप कण्ठ आदि स्थानों के स्पर्श से रहित होने से अ-स्पर्श धर्म से युक्त, अनुच्चरित अहं-आत्मक महामन्त्र के प्रवाह का स्फुरण अनाहत-हतोत्तीर्ण स्वर है।

शृङ्गाटक के समान त्रिकोणाकार रौद्री-स्वभाव अनाहत-हतोत्तीर्ण स्वर तुर्यावस्था है।

अकार रहित स्पर्श वर्णों से अभिव्यञ्जित वामा रूप अनाहत-हत नाद सुषुप्ति है।

आगम में बाहु रूप से निरूपित अम्बिका शक्ति का स्वरूप अनाहत नाद स्वप्नावस्था है।

आयुधाकार ज्येष्ठा स्वभाव हत-स्वर जाग्रत् अवस्था है।

उपर्युक्त प्रकार से चतुर्धा विभाजित अकार के कथन से तात्पर्य परम्परागत गुरु-मुख से प्रतिपादित सैद्धान्तिक युक्ति विशेष है। जिसके द्वारा हत, अनाहत, अनाहत-हत तीन रूपों में स्फुरित

अनाहत–हतोत्तीर्ण नाद के स्फुरणात्मक सामर्थ्य का साक्षात्कार होता है।

इस प्रकार अकथन से तात्पर्य है वाणी से परे अकार का कथन। अर्थात् क्रम से दिक्-काल आदि से अनवच्छिन्न स्वरूप में तादात्म्य अर्थात् स्वाभाविक स्फुरण का सार जिस को बल नाम से कहा गया है।

नाद से तादात्म्य के प्रभाव से प्राण, पुर्यष्टक तथा शून्य–प्रमाता-गत अभिमान (आस्था) के पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने के कारण शान्त, निस्तरङ्ग-प्रकाशित, चित् स्वरूप में समाविष्ट पूज्य गुरु, निश्चल आनन्द से सुशोभित, परम शून्य में समाविष्ट दृष्टि के बल से, कार्य–करण–कर्म से निरपेक्ष सर्व-व्यापी स्वरूप की अनुभूति के समय जो कुछ अवलोकन करते हैं, वह सब शाश्वत चित् रूप है।

टीकाकार ने इसकी विकल्प से भी व्याख्या की है। चारों वेद, षड्–दर्शन आदि के समन्वय से प्रतिपादित अन्य मतों के अन्तर्गत विहित पूजा परम्परा में आवश्यक रूप में अथवा अन्यथा निर्दिष्ट देवता चक्र के आलम्बन से नाद–स्वरूप के स्फुरण का प्रतिपादन किया गया है। अतः 'कथन' शब्द से यह अर्थ भी कहा जा सकता है। किन्तु श्रीमत् वातूलनाथ आदि सिद्ध जनों के मतानुसार पूज्य-पूजक–पूजन–सम्बन्ध से रहित निरालम्ब अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयात्मक त्रिपुटी से परे तादात्म्य अवस्था में महामरीचि रूप संवित् का अभेदात्मक विकास निरन्तर होता रहता है।

इस प्रकार प्रतिपादित अ-कथन कथा के बल से अर्थात् अनाहत–हतोत्तीर्ण अकार के तादात्म्य से महाविस्मय मुद्रा के द्वारा शून्य आकाश में स्वर की अनुभूति होती है।

शेष प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का टीकाकार के अनुसार अर्थ आगे लिखा जाता है:—

महाविस्मय = स्मय का अर्थ है अहङ्कार, विगत का अर्थ है— विनष्ट, अर्थात् अहङ्कार के पूर्णतया नष्ट होने पर सर्वोल्लङ्घन वृत्ति के द्वारा स्वरूप में प्रवेश अथवा स्व तथा पर भाव-भेद के विनाश से खेचरी–वृत्ति में समावेश ।

मुद्रा = समस्त मुद्राओं अर्थात् अवस्थाओं का महा विस्मय में विलय हो जाता है अतः इसको मुद्रा नाम से कहा गया है, जिसके द्वारा वाणी के विलास से परे शान्त अवस्था में प्रवेश होता है। इसी को मौन पद नाम से संकेत किया है। मुनेः भावः मौनः अथात् योग की चरम अवस्था ।

खस्वरता = खं अर्थात् भाव-शून्य आकाश भी स्व (आत्म) भाव से व्याप्त हो जाता है; खमपि स्वेन राति ।

इस प्रकार—अनाहत–हतोत्तीर्ण अकार के तादात्म्य साक्षात्कार के प्रभाव से निरहङ्कार अवस्था की प्राप्ति होने पर प्राण तथा अपान के निरोध से उद्भूत आकाशरूप परम शून्य स्थिति में त्रयोदश सूत्रों में उपदिष्ट सामरस्यात्मक नाद-ब्रह्म की अनुभूति होती है ।।१३।।

षड्दर्शनचातुराम्नायिकसर्वमेलापकथात्रयोदशकथासाक्षात्कारोपदेशभङ्ग्यानुत्तरपदाद्वयतया कस्यचिदवधूतस्य पीठेश्वरीभिर्महामेलापसमये सूत्रोपनिबद्धो वक्राम्नायः प्रकाशितः। तस्यैवेह मनाक् सतामवबोधार्थमस्माभिर्वृत्तिरियं कृता इति शिवम् ।

किसी समय पीठेश्वरों के सम्मेलन में किन्हीं अज्ञात-नाम सिद्ध अवधूत ने षड्-दर्शन तथा चारों वेदों के समन्वय से त्रयोदश कथाओं में उपदिष्ट, प्रत्यक्ष अनुभूत सर्वोत्कृष्ट, अद्वैत, मुखागत परम्परा की सूत्र-वद्ध रचना की। श्रीमद् अनन्तशक्ति पाद ने सत्पुरुषों के प्रबोध के लिए उसी निवन्ध की वृत्ति की रचना की है ।

इति परमरहस्यं वाग्विकल्पौघमुक्तं
भवविभवविभागभ्रान्तिमुक्तेन सम्यक् ।
कृतमनुपममुच्चैः केनचिच्चिद्विकासा-
दकलितपरसत्तासाहसोल्लासवृत्त्या ॥

चित् तत्त्व के कारण अकलित अर्थात् कला रूप में अपरि-वर्तित परम तत्त्व साहस से स्फुरित-वृत्ति से, जगत् के नानात्मक भेद-भ्रम से मुक्त किसी सिद्ध ने वाणी के विकल्प से मुक्त अनुपम परम रहस्य को पूर्ण रूप से प्रकाशित किया है ।

समाप्तेयं श्रीमद्वातूलनाथसूत्रवृत्तिः ।
कृतिः श्रीमदनन्तशक्तिपादानाम् ।

शुद्धि पत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२०	सारस	साहस
४	४	शक्तिपात्	शक्तिपात
६	४	उक्तिभङ्ग्या	उक्ति भङ्ग्या
६	१२	आत्मा स्वरूप	आत्म स्वरूप
६	२१	भा	याभा
७	२	उक्ति भङ्ग्या	उक्ति भङ्ग्या
८	१०	गन्थि	गृन्थि
१०	६	श्रोत	श्रोत्र
११	२	उद्वेलित	उद्वेजित
११	२४	हो	दो
१४	१	षष्ठम्	षष्ठ
१४	११	घटाकरं	घटाकारं
१४	१४	सुषुप्त दशा	सुषुप्ति दशा
१५	७	इच्जा	इच्छा
१६	१	सप्तम्	सप्तम
१६	२२	मीदृवस्व	मीदृक्स्व
१८	४	समाम	समान
१९	८	रसत्रिया	रसत्रया
२१	१०	मननख्यम्	मननाख्यम्
२४	१२	सवर्त्रं	सर्वत्र
२५	२	सद्रैव	सदैव